खेलकूद में दवाइयों का दुरुपयोग

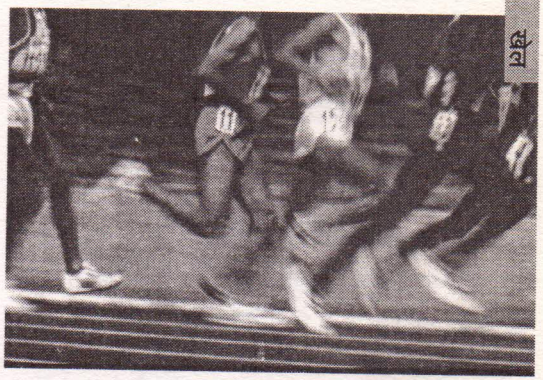

प्रवीण कुमार

आगामी अफ्रीकी-एशियाई खेलों में देश की आशाएं कुंजरानी देवी पर टिकी थीं लेकिन जब सीनियर एशियाई भारोत्तोलन प्रतियोगिता के दौरान परीक्षण किए गए, तो उसके शरीर में प्रतिबंधित दवाई स्ट्रायक्नीन पाई गई। दक्षिण कोरिया में जुलाई में आयोजित इन खेलों में कुंजरानी देवी ने 48 कि.ग्रा. श्रेणी में स्वर्ण पदक जीता था। दरअसल, अंतर्राष्ट्रीय भारोत्तोलन फेडरेशन को उस पर पिछले छह माह से शक था। कुंजरानी देवी ने इस प्रतियोगिता में अपनी पेशाब के नमूने 'ख' की जांच से इंकार कर दिया था। होता यह है कि हर जीतने वाले एथलीट को प्रतिस्पर्धा के फौरन बाद पेशाब के दो नमूने 'क' और 'ख' सीलबंद शीशियों में देने होते हैं।

मगर कुंजरानी तो इस पहाड़ की दिखती हुई चोटी भर हैं। पटियाला के राष्ट्रीय खेलकूद संस्थान में परीक्षण के दौरान भारोत्तोलक पी. सैलजा का परीक्षण भी धनात्मक था। सैलजा के साथ प्रशिक्षण ले रहे इस पुरुष एथलीट तो परीक्षण की भनक लगते ही संस्थान छोड़कर चले गए थे।

अचरज की बात यह है कि नई दिल्ली के नेशनल स्टेडियम की प्रयोगशाला में कुंजरानी को पेशाब परीक्षण में पास कर दिया गया था। हेल्थ फिटनेस ट्रस्ट की एक याचिका पर फैसला सुनाते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय ने 21 अगस्त के दिन सरकार को आदेश दिया कि वह देश में औषधि जांच हेतु एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रयोगशाला स्थापित करे। पूर्व चैम्पियन धावक पी.टी. ऊषा ने टिप्पणी की है कि भारत की प्रयोगशाला मान्यता प्राप्त नहीं है।

प्रदर्शनवर्धक दवाइयों का सेवन प्रतिस्पर्धात्मक खेलकूद में आज एक आम बात हो गई है। कनाडा में अगस्त में आयोजित विश्व चैम्पियनशिप में दस एथलीटों के परीक्षण से पता चला था कि उन्होंने प्रतिबंधित हॉर्मोन इरिथ्रोपोएटीन (इ.पी.ओ.) का सेवन किया था। परीक्षणों से पता चला था कि उनके खून में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या बहुत अधिक है। यह इ.पी.ओ. सेवन का संकेत हो सकता है लेकिन दिक्कत यह है कि शरीर में इ.पी.ओ. कुदरती तौर पर भी पाया जाता है।

द्वितीय विश्व युद्ध तक ऐसे बहुत कम रसायन उपलब्ध थे और उनकी क्षमता भी काफी कम थी। उस समय फौजियों में चौकन्नापन बढ़ाने और थकान को टालने के लिए एम्फीटेमीन्स का उपयोग किया गया था। इसके बाद 40 व 50 के दशक में तो एम्फीटेमीन्स एथलीटों की पसंदीदा दवाई बन गई। खास तौर से साइकिल दौड़ में बेहतर प्रदर्शन के लिए इनका इस्तेमाल होने लगा। 1960 के दशक में दवाइयों को आम तौर पर ज़्यादा सकारात्मक नज़रिए से देखा जाने लगा था। इसकी वजह से खेलकूद में भी इनका उपयोग बढ़ने लगा। औषधि विज्ञान में तरक्की के साथ एथलीटों को ज़्यादा विकल्प उपलब्ध हो गए। कोई खास प्रभाव पैदा करने के लिए विशिष्ट दवाइयां उपलब्ध हो गईं।

1991 में अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक संगठन से मान्यता प्राप्त प्रयोगशालाओं ने एथलीटों द्वारा दिए गए पेशाब के नमूने 'क' में 1004 पदार्थों की पहचान की थी। इनमें सबसे अधिक संख्या एनाबोलिक स्टीरॉइड् (552) और स्फूर्तिदायक पदार्थों (221) की थी। स्फूर्तिदायक पदार्थों में कतिपय सिम्पेथोमिमेटिक अमीन होते हैं जो शरीर के सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र की क्रिया की नकल करते हैं। खांसी के कई सिरपों में ये अमीन होते हैं और नाक से बहते स्राव को कम करने में मदद करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक संगठन ने पहले कोडीन को प्रतिबंधित सूची में रखा था किन्तु मार्च 1993 में चिकित्सकीय कार्य के लिए इसके उपयोग की अनुमति दे दी थी। शर्त यह होती है कि इसका उपयोग करने वाला खिलाड़ी इस बात की घोषणा कर दे। दिक्कत यह है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से किसी दवाई का उपयोग करने और प्रदर्शनवर्धन के लिए उसका उपयोग करने के बीच अंतर ज़्यादा नहीं होता। यह भी सम्भावना रहती है कि खुले आम मिलने वाली दवाई का सेवन भूल से कर लिया गया हो।

प्रदर्शन सुधार के लिए दवाई के सेवन का फैसला एथलीट या तो साथियों के दबाव में करते हैं या फिर इस डर से कि अन्य प्रतियोगियों ने इसका सेवन किया होगा। पूर्वी जर्मनी की धावक रेनाटा न्यूफील्ड ने 1977 में खुलासा किया था कि उसे धमकी दी गई थी कि यदि उसने एनाबोलिक स्टीरॉइड के रूप में 'सहायता' स्वीकार न की तो उसे गम्भीर परिणाम भुगतने होंगे। सीओल ओलम्पिक में कनाडा के पांच एथलीटों को स्टीरॉइड्स का सेवन करने के आरोप में प्रतियोगिता से बाहर कर दिया गया था। इसके बाद हुई ड्यूबिन जांच (1990) में दवाई सेवन के कई कारण गिनाए गए थे। इनमें प्रमुख थे - जीतने के लिए मीडिया का दबाव, सरकारों व प्रायोजकों द्वारा एथलीटों को प्रदर्शन आधारित भुगतान, चिकित्सा व्यवसाय पर भरोसा, जादुई दवा में मनोवैज्ञानिक आस्था, प्रतिस्पर्धा की भरमार और दर्शकोन्मुखी खेलकूद का विकास। यह भी हो सकता है कि जो एथलीट सामान्य प्रशिक्षण के ज़रिए अपनी क्षमता की चरम सीमा हासिल कर चुके हैं वे ऐसी दवाइयों का उपयोग करने लगें।

संदिग्ध दावे

प्रदर्शन पर दवाइयों के असर को प्रमाणित या खारिज करने के ठोस सबूत बहुत कम हैं। प्रदर्शन सुधार के लिए पसंदीदा दवाइयां एनाबोलिक स्टीरॉइड हैं। ये स्टीरॉइड कुदरती तौर पर शरीर में प्रजनन अंगों या यौन ग्रंथियों द्वारा बनाए जाने वाले स्टीरॉइड के कृत्रिम रूप हैं। एनाबोलिक स्टीरॉइड का विकास स्टीरॉइडों के पौरुष उत्पन्न करने वाले गुण को मांसपेशियां निर्मित करने के गुण से अलग करने के उद्देश्य से किया गया था। परन्तु इनके सेवन के बाद एथलीट के वज़न में जो वृद्धि होगी, उसका शरीर शायद उतने वज़न के लिए बना न हो। अतः इसकी वजह से क्षति भी हो सकती है।

इसके अलावा, मांसपेशियों की त्वरित वृद्धि के कारण कण्डराएं (मांसपेशियों को हड्डियों से जोड़ने वाली रचनाएं) क्षतिग्रस्त भी हो सकती हैं। कुछ डॉक्टरों का मानना है कि स्टीरॉइड का असर मनोवैज्ञानिक भी होता है क्योंकि उपयोग करने वाला व्यक्ति प्रत्यक्ष अपने शरीर में हो रहे परिवर्तनों को देख सकता है। पुरुष और स्त्री दोनों एथलीट एनाबोलिक स्टीरॉइडों का उपयोग इसलिए करते हैं क्योंकि इनके सेवन से मांसपेशियां विकसित होती हैं, बशर्ते कि साथ में कठोर व्यायाम किया जाए और प्रोटीन व कैलोरी युक्त खुराक ली जाए। लाल रक्त कोशिकाओं का उत्पादन बढ़ाकर ये स्टीरॉइड खून की ऑक्सीजन वहन क्षमता भी बढ़ाते हैं। शुरुआत में एनाबोलिक स्टीरॉइडों का चिकित्सा में उपयोग यातना शिविरों (कॉन्सन्ट्रेशन कैम्पों) में कैदियों में प्रोटीन की कमी का इलाज करने में हुआ करता था। व्यवहार में इन स्टीरॉइडों के पौरुषवर्धक गुण और मांसपेशी निर्माण सम्बंधी गुण को अलग करना सम्भव नहीं हो पाया है। इनके साइड प्रभाव काफी गम्भीर होते हैं। स्त्रियों में इनकी वजह से पुरुषोचित लक्षण विकसित होने लगते हैं तथा किशोर लड़कों में वृद्धि रुक जाती है।

एकमात्र तरीका निरन्तर जांच ही है। आजकल प्रतियोगिताओं के अलावा भी जांच का सहारा लिया जाता है क्योंकि कई एथलीट प्रशिक्षण के दौरान ऐसी दवाइयां लेते रहते हैं और प्रतियोगिता से पहले बंद कर देते हैं। इस तरह वे पकड़ में आने से बच जाते हैं। प्रदर्शन सुधार की दवाइयां प्रतियोगिता से काफी समय पहले ले ली जाती हैं ताकि इस दरम्यान शरीर उनको पचा डाले। अब जांचकर्ताओं को उस दवा की नहीं बल्कि दवा के विघटन से बने पदार्थों की जांच करनी पड़ती है। यह भी मुमकिन है कि जांच की प्रक्रिया आधुनिकतम दवाइयों को ध्यान में रखकर न बनी हो। मसलन आर्जीनीन एक ऐसा ही पदार्थ है। यह शरीर में वृद्धिकारक हॉर्मोन के निर्माण में मदद करता है। परीक्षण में आर्जीनीन को पकड़ पाना असम्भव नहीं तो मुश्किल ज़रूर है।

शरीर में इ.पी.ओ. को ताड़ना भी मुश्किल है क्योंकि यह बहुत तेज़ी से गायब हो जाता है। नमूना लेने के आठ घण्टे के अंदर परीक्षण करना ज़रूरी होता है। अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक संगठन ने घोषणा की थी कि वह पहली बार सिडनी ओलम्पिक में इ.पी.ओ. की जांच करेगा।

1994 में लिलहैमर के शीतकालीन ओलम्पिक खेलों

दवाइयों की उपस्थिति का पता लगाने की एक नई विधि

वैसे तो 2004 के ओलम्पिक खेल बहुत करीब नहीं हैं लेकिन कई तैयारियां फिर भी ज़ोरों से जारी हैं। ऐसी ही एक तैयारी है प्रदर्शन को बेहतर करने के उद्देश्य से खिलाड़ियों द्वारा लिए जाने वाले मादक पदार्थों को ढूंढ निकालने की। एक तरीका खोज भी लिया गया है जिसके ज़रिए इक्का-दुक्का खिलाड़ियों की बजाए सभी का परीक्षण किया जा सकेगा। इस नई चिप-प्रयोगशाला के द्वारा दर्ज़नों नशीले पदार्थों के लिए हज़ारों नमूनों की जांच कुछ ही घण्टों में की जा सकेगी। यह नई तकनीक एण्टीबॉडी जांच की स्थापित टेक्नॉलॉजी पर निर्भर है लेकिन क्रेमलिन की टैडॉक्स लैबोरेटोरीज़ के वैज्ञानिक इसे 1 से.मी. की सिलिकॉन जैव-चिप पर ले आए हैं। इससे एक बार में 25 ड्रग्स तक की जांच हो सकती है।

इस चिप की सतह पर विशिष्ट ड्रग और शरीर में इसके विघटन से उत्पन्न सह-उत्पादों को पकड़ सकने वाली एण्टीबॉडीज़ को 25 बिन्दुओं के रूप में जड़ दिया जाता है। पेशाब के एक नमूने को इस चिप पर डालने पर वह फैल जाता है और इस तरह 25 पदार्थों के सेवन का पता किया जा सकता है। इसके बाद चिप पर एक फ्लोरेसेंट चिपकु पदार्थ डाला जाता है। यह चिपकु पदार्थ उन एण्टीबॉडी से जुड़ जाता है जिन्होंने लक्षित ड्रग को पकड़ लिया है। जुड़ने के बाद यह रोशनी उत्सर्जित करता है। प्रत्येक बिन्दु से छोड़ी जा रही चमक की मात्रा शरीर में मौजूद मादक पदार्थ की मात्रा दर्शाती है। रैडॉक्स लैबोरेटरीज़ की रोसिन मोलौए कहती हैं कि आप मुख्य यौगिक और उसके शरीर में विघटित तत्व दोनों का पता लगा सकते हैं। मोलौए कहती हैं कि इस विधि से एक परीक्षण प्रति सेकण्ड की दर से जांच की जा सकती है। यह प्रारंभिक जांच होगी। किसी नतीजे पर संदेह होने पर पुष्टिकरण विश्लेषण किया जाएगा।

जांच में लगने वाले कम समय के चलते अब सभी खिलाड़ियों का परीक्षण हो सकेगा, इससे किसी को बुरा भी नहीं लगेगा और मादक पदार्थ का सेवन करने वालों में डर भी बना रहेगा। किंग्स कॉलेज के ड्रग्स कण्ट्रोल सेंटर के निदेशक डेविड कोवान कहते हैं कि इस विधि से खेल से पूर्व जांच में बहुत मदद मिलेगी।

आज स्थिति यह है कि जैव-चिप के ज़रिए कुछ सामान्य ड्रग्स जैसे ट्रेनबोलोन और नॉर टेस्टोस्टेरॉन स्टीरॉएड्स की जांच हो सकती है। अन्य ड्रग्स को भी शामिल करने की कोशिश चल रही है। एक समस्या यह भी है कि खिलाड़ियों की तनी हुई नसों के कारण किसी भी वक्त पेशाब का नमूना देना सम्भव नहीं होता। इसलिए बेहतर होगा ऐसी चिप का निर्माण जो मुंह की लार से जांच कर सके। रैडॉक्स इस पर भी काम कर रही हैं।

जल्द ही यह कम्पनी न्यूपोर्ट में ब्रिटिश एसोसिएशन ऑफ स्पोर्ट एण्ड एक्सर्साइज़ साइंसेज़ की सालाना बैठक में यह जैव-चिप तकनीक प्रस्तुत करेगी। *(स्रोत विशेष फीचर्स)*

में पहली बार ब्लड डोपिंग का पता लगाने के लिए खून के नमूने लिए गए थे। ब्लड डोपिंग में स्वयं एथलीट के शरीर में से कुछ समय पूर्व निकाले गए खून को फिर से उसके शरीर में डाल दिया जाता है। इससे एथलीट की ऑक्सीजन वहन क्षमता रातों रात बढ़ जाती है। किन्तु यह प्रक्रिया शायद ही ज़्यादा प्रचलित हो पाएगी क्योंकि इसके लिए किसी हुनरमंद व्यक्ति की आवश्यकता होती है और खून को चार-पांच सप्ताह तक किसी ब्लड बैंक में रखना होता है। इस वजह से पकड़े जाने की सम्भावना बढ़ जाती है।

अधिकांश देशों में जांच की ज़िम्मेदारी सम्बंधित खेल संगठन की होती है। अब इस संगठन की राष्ट्रीय संस्थाओं के गठन का महत्व बढ़ रहा है। यू.एस. ओलम्पिक समिति के रॉबर्ट वॉय कहते हैं, 'गैर-पेशेवर स्तर पर खेलकूद का संचालन करने वाले अधिकारियों का कारोबर ही इस आधार पर चलता है कि वे विश्व स्तर के खिलाड़ी देते रहें। कड़वी सच्चाई यह है कि लोग हारे हुए खिलाड़ियों को देखने के लिए पैसा नहीं देते और उन्हें कोई प्रायोजित भी नहीं करता। कभी-कभी इस वजह से अधिकारी दवा के दुरुपयोग की समस्या को अनदेखा करने लगते हैं।'

लगभग पूरी दुनिया में खेलकूद राष्ट्रीय स्तर पर होते हैं। लिहाज़ा दवाइयों के दुरुपयोग की समस्या के मामले में सरकारों की प्रमुख भूमिका है। 1984 में यूरोपियन चार्टर पारित हुआ था। इसमें खेलकूद में दवाइयों के दुरुपयोग के विरुद्ध रणनीतियों व नीतियों का बयान है। अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक संगठन के नियम परोक्ष रूप से ओलम्पिक से बाहर भी लागू होते हैं। प्रयोगशालाओं को मान्यता देने तथा दवाइयों के दुरुपयोग सम्बंधी सूची बनाने का काम यह संगठन ही करता है तथा नमूने एकत्रित करने का काम भी उसके दिशानिर्देशों के मुताबिक होता है। इनका विश्लेषण संगठन द्वारा मान्य प्रयोगशालाओं में किया जाता है।

1983 के पैन-अमरीकन गेम्स में 19 एथलीट को गैस क्रोमेटोग्राफी/मास स्पेक्ट्रोमीट्री जांच के बाद अयोग्य घोषित कर दिया गया था। गैस क्रोमेटोग्राफी की विधि अत्यंत संवेदनशील है और इसकी मदद से बहुत कम मात्रा में उपस्थित पदार्थों का पता लगाया जा सकता है। वैसे कई एथलीट ने तो पहले ही इस प्रतियोगिता से अपने नाम वापिस ले लिए थे। 1984 के लॉस एंजेल्स ओलम्पिक में पेशाब के 1510 नमूनों में से 12 में एनाबोलिक स्टीरॉइड पाया गया था। यद्यपि आम जांच को नीति विरुद्ध माना जाता है किन्तु किसी भी प्रमुख प्रतियोगिता से पहले की जाने वाली जांच से पता चलता है कि जांच की तलवार लटकी होने के बावजूद एथलीट दवा लेने का खतरा उठाने को तैयार हैं।

जब यह सुनिश्चित हो गया कि जांच तो होनी ही है तो एथलीट दवाई को छोड़ने के बजाय उसके उपयोग का समय इस तरह निर्धारित करने का प्रयास करने लगे हैं कि प्रतियोगिता के वक्त तक वह शरीर में नज़र न आए। इस लिहाज़ से प्रतियोगिता अवधि से बाहर परीक्षण की रणनीति कारगर साबित हुई है। ऐसे परीक्षण कभी भी अचानक हो सकते हैं ताकि सम्बंधित एथलीट को बचने का मौका न मिले। इस परीक्षण से बचने का प्रयास एक अपराध माना जाएगा।

1989 में विभिन्न देशों के मंत्री दवाइयों के दुरुपयोग के विरुद्ध एक संधि पर राज़ी हुए। 1990 में अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक संगठन ने इस सम्बंध में ओलम्पिक दिशानिर्देशों की रुपरेखा तैयार की। अब प्रतियोगियों को किसी भी समय परीक्षण से गुज़रना पड़ सकता है। दोषी एथलीट को दण्डित करने के बारे में अलग-अलग देशों में अलग-अलग स्थिति है। यूनान में एनाबोलिक स्टीरॉइड की सज़ा दो साल कैदे बामशक्कत है जबकि कनाडा में पहली बार दोषी पाए जाने पर चार वर्ष के प्रतिबंध और दूसरी बार दोषी पाए जाने पर आजीवन प्रतिबंध का प्रावधान है।

मगर मात्र परीक्षणों से यह विकृति दूर होने वाली नहीं है। 1990 के चार्टर में स्पष्ट किया गया है कि दवा दुरुपयोग रोकने के किसी भी कार्यक्रम में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***